328hi17

17

आत्म और मनोवैज्ञानिक प्रक्रम

जैसे–जैसे लोग बड़े होते हैं वे अपने आत्म का अपना संप्रत्यय विकसित कर लेते हैं जो यह निश्चित करता है कि वे दूसरों से कैसे सम्बन्ध बनाते हैं ओर विभिन्न क्रियायें सम्पादित करते हैं। यद्यपि कि हमारा आत्म संप्रत्यय स्थिर नहीं रहता, अपितु जीवन को विभिन्न अवस्थाओं में बदलता रहता है। हम दूसरों को व्यक्ति के रूप में प्रत्यक्षीकत करते हैं, उनसे सम्बन्ध बनाते हैं और मैत्री और अन्य प्रकार के निकट के सम्बन्ध विकसित करते हैं। हम आत्म संयम भी विकसित करते हैं और नैतिक रूप से विकसित होते हैं। इस प्रकार आत्म केवल व्यैक्तिक कार्यों से सम्बन्धित अपना गुण नहीं रहता। यह उसके पार जाता है और जिस सामाजिक संसार में हम रहते हैं से सम्बन्धित करता है। वास्तव में, यह, आत्म सामाजिक संसार से परस्पर आदान–प्रदान के रूप में जोड़ता है। यह सामाजिक संसार के साथ हमारी अन्तःक्रियाओं को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है। इस प्रक्रम में आत्म भी सामाजिक संसार से प्रभावित होता है। इस पाठ में आप कार्यरूप में आत्म के बारे में पढ़ने जा रहे हैं और देखेंगे कि हम दूसरों के साथ कैसे दिखते और और अन्तःक्रिया करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगेः

- सम्पूर्ण जीवन विस्तार में आत्म का विकास स्पष्ट करने में;
- आत्म संयम के अर्थ को समझने में;
- नैतिक विकास की अवस्थाओं को स्पष्ट करने में; और
- सामाजिक पक्ष के व्यवहार के विकास की अवस्थाओं का वर्णन करने में।

टिप्पणी

17.1 जीवन विस्तार के परिप्रेक्ष्य में आत्म

हम में से अधिकांश इस बात से सहमत हैं कि मानव प्राणी का आत्म होता है। इसे एक भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व स्वयं के गुणों और कार्यों वाला माना जाता है। बहुधा इसे हमारे जीवन के अनुभवों का स्वाभाविक पक्ष समझा जाता है। यद्यपि यह मान्यता आधारहीन लगती है जब हम बच्चों के जीवन को समझने का प्रयास करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि प्रथम वर्ष के मध्य में आत्म पहचान का कुछ अपरिष्कत विचार पाया जाता है। इसी काल में बच्चे दूसरे शिशुओं के आवाजों और मुखाकति की प्रतिमाये बनाने लगते हैं। कभी–कभी इसे आत्म–अन्य भेद के आरंभ का संकेत व्याख्यायित किया जाता है।

शैशव: शीशे का प्रयोग करते समय यह पाया गया है कि विभन्न आयु समूहों के बच्चे देखी गई प्रतिमाओं के प्रति भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। 15 से 24 मास के मध्य शिशु दश्यगत आत्म संप्रत्यय बनाते पाये जाते हैं। वीडियो टेप का प्रयोग करके देखा गया है कि तीन वर्ष के बच्चे को स्पष्ट आत्मज्ञान नहीं होता। चार और पाँच वर्ष के बच्चे अपना प्रतिनिधित्व अच्छी तरह कर पाते हैं। नये चलने वाले बच्चे दूसरे बच्चों को आयु और लिंग के आधार पर बांटने लगते हैं। बचपन से संवर्ग मूर्तरूप रहते हैं (जैसे स्वामित्व, जो कार्य वे कर सकते हैं)।

बचपन और किशोरावस्था: प्रारंभिक बचपन में बच्चे स्वयं को मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के आधार पर स्पष्ट समझ शुरू करता है। वे अभिवत्तियों के बारे में सोचने लगते हैं। किशोरावस्था में आत्म का प्रतिनिधित्व और स्पष्ट और सूक्ष्म हो जाता है। वे अनुभव करते हैं कि वे सबके साथ और हर परिस्थिति में एक से व्यक्ति नहीं हैं। एरिकस्न के अनुसार पहचान किशोरावस्था में विकास का महत्वपूर्ण बिदु है। पहचान से एक स्थायी बोध आता है कि वह व्यक्ति कौन है और उसके मूल्य और आदर्श क्या हैं। बहुत से किशोर पहचान का संकट अनुभव करते हैं आत्म का एक तर्क संगत और बने रहने वाला बोध पाने में असफल रहते हैं। उन्हें अपनी भूमिका, मूल्य और व्यावसायिक चुनावों के प्रति वचनबद्ध रहने में कठिनाई अनुभव होती है। कुछ किशोर पर्याप्त आत्म खोज और अन्तर दर्शन के बारे में अपनी पहचान बनाते हैं। दूसरे बिना अधिक खोजबीन किये ही वचनबद्ध हो जाते हैं। इससे पहचान का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

प्रारंभिक प्रौढ़ता: विकास की इस अवस्था में निकटता बनाम एकान्त के विरोध की चुनौती का सामना करना पड़ता है। निकटता का आशय है वचनबद्ध और टिकाऊ सम्बन्ध बनाना है। इसमें रोमांचकारी और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध आते हैं। विकासक्रम में व्यक्ति को माता/पिता, चाचा/चाची जैसा अपनी भूमिका को पुनःस्पष्ट करने की आवश्यकता होती है।

मध्य अवस्था: इस अवस्था में लोग अगली पीढ़ी से सम्बन्ध और समाज के प्रति अपने योगदान की चिन्ता करने लगते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति उत्पत्ति बनाम ठहराव के संकट का सामना करता है। लोगों से अधिक से अधिक उत्पादक क्रियाओं में संलग्न

रहने की अपेक्षा की जाती है। वास्तव में 'मध्य जीवन संकट' एक विख्यात पदबन्ध हो गया है। यह जीवन की सामान्य लय में बाधा उत्पन्न कर देता है। कुछ लोगों के लिये परिवर्तन धीमी गति से होते हैं और दूसरों के लिये इनका रूप उग्र होता है।

वद्धावस्थाः आयु संभाविता में बढ़ोत्तरी के साथ ही वद्ध लोगों की आबादी में बढ़ोत्तरी हुई है। वद्ध लोगों के सामने सम्पूर्णता बनाम निराशा की बहुत बड़ी चुनौती है। शारीरिक स्वास्थ्य में कमी, सहयोग में कमी और शारीरिक रोग वद्ध लोगों के जीवन को कष्टप्रद बना देते हैं। सामाजिक गतिशीलता और परम्परागत निम्नस्तरीय आत्म संप्रत्यय से पीड़ित रहते हैं। फिर भी जो अपने पिछले जीवन को यह सोचकर कि उन्होंने अच्छा जीवन जिया है, सन्तोष का अनुभव करते हैं, उन्हें सम्पूर्णता की अनुभूति होती है। दूसरों को पछतावा और निराशा हो सकती है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आत्म की धारणा जीवन यात्रा के बीच विभिन्न रूप ग्रहण करती है और महत्वपूर्ण परिवर्तनों के मध्य से गुजरती है। यह लोगों के अनुभवात्मक संसार में परिवर्तनों को व्यक्त करती है। फिर भी, लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह एक शक्तिशाली बल के रूप में कार्य करती है जो व्यवहार को निर्देशित करती है और सामाजिक परिस्थितियों में अन्तःक्रियाओं को ढालती है। आत्म का रूपान्तरण होता है और व्यक्ति आत्म संरचना में बहुत से तत्व जुड़ते और निकलते हैं। अक्सर लोग आदर्श आत्मक के लिये प्रयास करते हैं। उनसे अपने समाज के स्वस्थ विकास में योगदान करने की अपेक्षा की जाती है।

महात्मा गांधी और मदर टेरेसा जैसे लोग मनोवैज्ञानिक दष्टि से बहुत सशक्त थे और उन्होंने समाज में अत्याधिक योगदान किया है। उत्तम रीति से विकसित विवेक उनका सबसे बड़ा गुण था। उनके विचार , वाणी और कार्य एक साथ होते थे। गांधी जी का विचार था कि सत्य की सदा विजय होती है इसलिये वे केवल सत्य की बोलते थे। वे जो कहते थे करते भी थे। मदर टेरेसा गरीबों और रोगियों के बारे में चिन्ता करती थी। वे उनके कल्याण के लिये कहती थी और इसी उद्देश्य के लिये उन्होंने सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। इसी प्रकार विश्व के बहुत प्रसिद्ध लोगों ने समाज के कल्याण के लिये बहुत योगदान किया है। ये सभी अपनी सत्यनिष्ठा के लिये जाने जाते हैं। भली प्रकार समन्वित लोग केवल अपने व्यक्तिगत विकास में ही नहीं किन्तु समाज के विकास में भी योगदान करते हैं। ऐसी सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक वयक्ति को अपनी संभाव्य कुशलताओं को विकसित करना चाहिये, आगे चलकर ये लोग मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दष्टि से सक्षम हो जाते हैं और एक स्वस्थ जीवन जीते हैं। सामाजिक क्षमता प्राप्त करके और समाज को योगदान करके, ये लोगों का सम्मान प्राप्त करते हैं।

17.2 आत्म-संयम और इसका विकास

आत्म संयम अपने व्यवहार को अधिकतम संतुष्ट और पुरस्कत करने वाले व्यवहार को सीखने और नियमित करने का उपक्रम है। इस उद्देश्य के लिये लोग आत्म संयम के

टिप्पणी

लिये अनेक रणनीतियों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये, एक मोटा व्यक्ति अपना वजन कम करने के लिए, एक लगातार धूम्रपान करने वाले को धूम्रपान कम करने और एक अत्याधिक तनावयुक्त व्यक्ति को तनाव कम करने के लिस आत्म संयम के तरीके सिखाये जाते हैं।

आत्म संयम के चरण: आत्म संयम के विकास में निम्नांकित महत्वपूर्ण चरण हैं:

1. **नियत कार्य का निष्पादन करना:** यह एक विशेष समस्या के समाधान के लिये किये गये कार्य की ओर संकेत करता है।
2. **निष्पादन और परिणाम का स्व-निरीक्षण करना:** इसका अर्थ है वास्तविक प्रेक्षण और किये गये कार्य का लेखा रखना।
3. **आत्म मूल्यांकन:** इसके अन्तर्गत स्वयं की क्षमता के बारे में अपने विश्वासों में संशोधन करना।
4. **आत्म-पुनर्बलन:** इसका अर्थ है उपलब्धि को स्वीकारना और सहमति देना है जो वास्तविक पुरस्कार या रचनात्मक आत्म कथन की ओर ले जा सकता है।

निम्नांकित उदाहरण में एक बच्चे को शान्त रहना और कठिन परिस्थिति पर नियंत्रण करना और प्रतिक्रिया के लिये उत्तेजित न होना सिखाया जाता है।

1. **उत्तेजना के प्रति तैयार करना:** बच्चे को कठिन परिस्थिति की प्रत्याशा करना सिखायें और उसे बताइये कि वह उत्तेजित न हो।
2. **कठिनाई का सामना करना:** कल्पना द्वारा अभिनय या अभ्यास, बच्चे को उत्तेजना का सामना करना सिखाया जाता है किन्तु उसी समय नियंत्रण में रहना जिससे वांछित अनुक्रिया हो सके।
3. **उत्तेजना से सफलतापूर्वक निपटना:** मांशपेशियों का कसाव, भय या क्रोध का आने पर बच्चे को शारीरिक अनुक्रिया के प्रति सजग किया जाता है और इनसे सफलतापूर्वक निपटने का कौशल सिखाना।
4. **परिणामों के बारे में सोचना:** बच्चे को उत्तेजना– सकारात्मक या निषेधात्मक से निपटने के परिणाम के बारे में सोचना सिखाया जाता है। बच्चे को स्वयं के बारे में, दूसरों की अनुक्रियाओं तथा अन्य परिणामों के बारे में अधिक सोचने को प्रोत्साहित भी किया जाता है। इसके लिये एक डायरी रखना, मित्रों से बात करना, माता–पिता से बात करना और सामान्यतः संभावनाओं के बारे में अधिक सजग होना हो सकता है।

आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण (एस.आई.टी.): इस प्रकार का निर्देशन 'आत्म–वार्ता' अनुक्रियाओं पर जोर देकर कुशलता के मुख्य क्षेत्रों के विकास पर बल देता है। आत्म–निर्देशन के निम्नांकित चरण हैं:

1. समस्या को पहचानने का प्रशिक्षण
2. आत्म–प्रश्न विषयक कौशल का शिक्षण
3. अवधान का शिक्षण– उपयुक्त कौशलों पर जोर देना और प्रतिक्रिया करना

4. आत्म–पुनर्बलन कौशल का शिक्षण करना जिससे बच्चे अपनी अनुक्रियाओं का मूल्यांकन कर सकें और ग्रहण करने वाली अनुक्रियाओं को पुरस्कत कर सकें।
5. आत्म सुधार और सुफलतापूर्वक निपटने के विकल्प बच्चों को अपने व्यवहार का निरीक्षण करने, विकल्पों का मूल्यांकन करने और वैकल्पिक समाधान और पहुंचने के योग्य बनाते हैं।

बॉक्स 17.1: *आत्म निर्देशन एक उदाहरण*

1. समस्या की पहचानः आप लम्बे समय तक पढ़ने के लिए नहीं बैठ सकते।
2. प्रश्न वाचक कौशलः आपको यह कठिनाई कब से है? दिन के किस समय आपके साथ ऐसा होता है? क्या यह किसी विषय से सम्बन्धित है?
3. अवधानः (क) एक साथ केवल तीस मिनट तक बैठिये; (ख) पांच मिनट के लिए विश्राम लीजिये, पुस्तकों को हटाकर वह कीजिए जो आपको अच्छा लगता है (जैसे अपनी मां से गप–शप करना, रेडियो सुनना इत्यादि); (ग) पढ़ाई पर वापस आइये और स्वेच्छा से अपने अवधान को पढ़ाई की तरफ लाइये।
4. आत्म पुनर्बलनः (क) जब आपने कुछ समय के लिए अबाधित पढ़ाई कर ली है, आप अपने को यह कहकर पुरस्कत करें मैं इस काम को दस मिनट तक कर लिया है। अब मैं इसे बीस मिनट तक कर सकता हूँ, या जब आप कुछ दिनों बाद अपने उद्देश्य को पा लेते हैं तो आप वह काम करें जिसे करना आपको सबसे अच्छा लगता है, अपने को पुरस्कत करें। दूसरी ओर यदि आप अपने प्रयासों से बाधित होते हैं तो आप स्वयं को अपनी सबसे अधिक पसन्द के काम को छोड़कर दण्डित करें। (जैसे अपने प्रिय टी.वी. सीरियल को देखना)।
5. आत्म सुधार और सफलतापूर्वक निपटने का विकल्पः जब आप अनपेक्षित कार्य करें तो अपने को सुधारें। इसमें जब आप बाधित हों तो फिर से अपने कार्य पर ध्यान दें। बाधा से सफलतापूर्वक निपटने के लिये अपने पढ़ाई के स्थान में परिवर्तन कर सकते हैं जैसे पुस्तकालय जैसे शान्त स्थान पर चले जायें।

इस प्रकार आत्मोन्नति के लिये आत्म–नियंत्रण के तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. आत्म–नियंत्रण से आप क्या समझते हैं?
2. संक्षेप में किन्हीं दो स्थितियों का वर्णन करें जिनमें आत्म नियंत्रण प्रभावी हो सकता है।

टिप्पणी

17.3 नैतिक विकास

''सही'' और ''गलत'' की धारणाओं का विकास सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। ये धारणायें व्यक्ति को अपनी अभिरुचियों के सन्तुलन तथा दूसरों के होने में सहायता करती हैं। अन्य शब्दों में ऐसे नियमों को ग्रहण करना नैतिकता को सुगम बनाते हैं या नियामक स्तर जो लोगों के सामाजिक जीवन को संगठित करने में सहायक होते हैं। नैतिकता का विकास अवस्थाओं से होता है। दूसरे व्यक्तियों के विचार का विकास और परिप्रेक्ष्य लेना इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शैशवकाल में बच्चे सामाजिक अन्तःक्रिया को एक पारस्परिक प्रक्रम के रूप में पहचानना प्रारंभ करते हैं। लोगों के कार्य स्वयं अपने पर ही निर्भर करते हैं यह अनुभव करना एक बड़ी उपलब्धि है। प्रारंभ में आठ वर्ष की आयु तक बच्चे सीधी और मूर्तरूप लक्षणों की ओर ध्यान देते हैं और दूसरों की प्रशंसा करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। धीरे–धीरे वे दूसरों के दष्टिकोण को समझना सीखते हैं। यह योग्यता बचपन से प्रारंभ होकर किशोरावस्था तक चलती है।

संज्ञानात्मक विकास की प्रतिकति को स्पष्ट करने का प्रयास करने वाले शोधकर्ताओं ने यह देखने का प्रयास किया है कि नैतिक तार्किकता कैसे विकसित होती है। पियाजे ने पाया कि नौ से दस वर्ष तक के बच्चे दबाव की नैतिकता दर्शाते हैं।

इस अवस्था में बच्चे सामाजिक नियमों की अनुरूपता को सोचते हैं। ऐसे नियम घटना के एक पक्ष पर ध्यान देते हैं और दूसरे को अनदेखा करते हैं। उदाहरण के लिए यदि बच्चे को यह तय करने को कहा जाय कि दण्ड का भागी कौन है, एक बच्चा जो अपनी प्रिय डिश चुराने के लिये रसोई में जाता है और उस जार तक पहुंचने में, जिसमें उसकी प्रिय डिश रखी है, कप तोड़ देता है, या दूसरा बच्चा जो नहीं जानता और अचानक दरवाजा खोल देता है और पांच कप तोड़ देता है जो दरवाजे के पास रखे थे।

छोटे बच्चे ने पहले बच्चे की अपेक्षा दूसरे वाले बच्चे को जिसने पांच कप तोड़े थे अधिक दण्ड प्रस्तावित करता है। बड़े बच्चों ने दूसरा तर्क अपनाया। वे व्यक्ति के इरादे के बारे में सोचते हैं और नियमों को अपरिवर्तनीय नहीं मानते। आवश्यकता पड़ने पर नैतिक नियम बदले जा सकते हैं। यह सहयोग की नैतिकता मानी जाती है। यदि हम बच्चों के तर्क की तुलना करें तो छोटे बच्चों की नैतिकता स्वाभाविक है।

सामाजीकरण के प्रक्रम में नैतिक विश्वास आत्मसात किये जाते हें और वे नैतिक विकास का आधार बनाते हैं। नैतिक संप्रत्यय बच्चे में अति प्रारंभिक आयु से विकसित होने लगते हैं। प्रथम अवस्था में नैतिकता परिणामों पर आधारित होती है, अर्थात् लगभग सात वर्ष की आयु के पूर्व कार्यों को श्रेणीबद्ध रूप में देखते हैं, जो कार्य 'सकारात्मक' परिणाम दर्शाते हैं वे ''अच्छे'' और जो नकारात्मक परिणाम लाते हैं वे 'बुरे''। यह प्रतिकति वस्तुगत नैतिक रुझान कहलाती है। सात वर्ष की अवस्था के बाद हम विभिन्न कार्यों के पीछे की मंशा पर ध्यान देते हैं। इसे व्यक्तिगत नैतिक रुझान कहा जाता है और यह दस वर्ष की आयु के आस–पास विकसित होता है।

नैतिक तर्क तीन विभिन्न स्तरों से गुजरते हैं– पूर्व पारंपरिक अवस्था, पारंपरिक अवस्था और उत्तर पारंपरिक अवस्था।

पूर्व–पारंपरिक अवस्था में तर्क बहुत कुछ आत्म केन्द्रित होता है और व्यक्ति के व्यवहार के परिणामों पर ध्यान देता है। पारंपरिक अवस्था में तर्क मान्य नैतिक नियमों पर ध्यान देता है। बाद में किशोरावस्था में व्यक्ति पश्चात् पारंपरिक अवस्था में प्रेवश करते हैं जिसमें वे अमूर्त सिद्धान्तों पर निर्भर करते हैं। कोलबर्ग द्वारा नैतिक विकास की कल्पित अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

पूर्व-पारंपरिक स्तर

प्रथम अवस्था: नैतिक निर्णय आज्ञाकारिता और दण्ड पर निर्भर करता है जो कार्य अधिकारी के प्रति आज्ञाकारिता दर्शाते हैं और व्यक्ति को दण्ड से बचने की अनुमति देते हैं, उन्हें ''अच्छा'' कहा जाता है।

दूसरी अवस्था: वे कार्य जो कि व्यक्ति की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं ''अच्छे'' माने जाते हैं जो नहीं करते वे ''बुरे''।

पारंपरिक स्तर

तीसरी अवस्था: जो कार्य दूसरों के द्वारा अनुमोदित होते हैं वे ''अच्छे'' माने जाते हैं और जो अनुमोदित नहीं होते ''बुरे'' माने जाते हैं।

चौथी अवस्था: जिन कार्यों के द्वारा व्यक्ति ''अपना कर्तव्य पालन'' करता है या जो कानून और अधिकारी के प्रति सम्मान दर्शाते हैं ''अच्छे'' माने जाते हैं। जो कार्य इस कर्तव्य भाव का उल्लंघन करते हैं ''बुरे'' माने जाते हैं।

उत्तर पारंपरिक स्तर

पांचवी अवस्था: वे कार्य जो समुदाय की भलाई के अनुरूप होते हैं उन्हें ''अच्छा'' माना जाता है। जो कार्य समुदाय के कानूनों का पालन नहीं करते ''बुरे'' कहे जाते हैं।

छटी अवस्था: वे कार्य जो व्यक्ति के स्वचयनित न्याय के मानकों के अनुरूप होते हैं ''अच्छे'' कहे जाते हैं जो कार्य इन मानकों के अनुरूप नहीं होते ''बुरे'' कहे जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. नैतिक रुझान को दिशानिर्देशन के वैकासिक स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

   .....

2. कोलबर्ग के अनुसार नैतिक तर्क कितने स्तरों से गुजरता है?

   .....

बाक्स 17.2

स्वयं प्रयास कीजिये

देखिये क्या आपने परवर्ती बचपन और किशोरावस्था के मध्य नैतिकता के प्रति अपनी अवधारणा में परिवर्तन अनुभव किये। आपने कबसे यह जानना शुरू किया कुछ बातें बुरी होने के कारण योग्य नहीं हैं जबकि अच्छी बातों को दुहराया जाता है। उन लोगों की सूची बनाओ जो आपके नैतिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं।

कोलबर्ग कुछ परिस्थितियों का प्रयोग करते थे जिनमें नैतिक दुविधा प्रस्तुत की जाती है और व्यक्ति का काम उस दुविधा का समाधान खोजना है। समाधान व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त नैतिक तर्क की अवस्था की ओर संकेत करता है। सामान्य रूप से नैतिक ढंग से कार्य करने में नैतिक तर्क की उच्च अवस्था के विचार की आवश्यकता है। अध्ययनों से पता चलता है कि जोखिम का प्रत्यक्ष स्वरूचि और सामाजिक परम्पराओं जैसे कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्ययनों ने यह भी बताया है कि बच्चों का नैतिक व्यवहार भिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण के लिये एक स्थिति (घर) में धोखा देना हो सकता है किन्तु स्कूल में नहीं। संकेत मिलता है कि परिस्थिति जन्य कारकों की अहं भूमिका होती है।

17.4 परिवार की भूमिका

हाल के अध्ययनों ने नैतिक विकास में परिवार की भूमिका को दर्शाया है। सही और गलत के सम्बन्ध में पारिवारिक आदान–प्रदान और माता–पिता के द्वारा नियमों की अभिव्यक्ति नैतिकता के विकास में योगदान करते हैं। उचित व्यवहार का विचार दो वर्ष की अवस्था में प्रारंभिक रूप से विकसित होने लगता है। माता–पिता के द्वार ग्राह्य व्यवहार पर बल नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार के बाहर स्कूल, मित्र और पड़ोस भी नैतिकता के विकास में योगदान करते हैं।

गिलिगन का कहना है कि लड़के स्वतंत्र और उपलब्धि केन्द्रित सामाजिक होते हैं जबकि लड़कियां देख–भाल और उत्तरदायित्व का भाव रखते हुये सामाजिक होती हैं। नारीत्व को बहुधा आत्मत्याग और दूसरों की चिन्ता करने से जोड़ा जाता है।

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि नैतिकता के प्रश्न विभिन्न संस्कतियों में भिन्न तरीकों से लिये जाते हैं। उदाहरण के लिये पाश्चात्य समाज में प्रचलित दष्टिकोण पाश्चात्य संस्कति से भिन्न अन्य संस्कतियों में उपयुक्त न समझे जा सकते हों। उदाहरण के लिये भारतीय संदर्भ में असंबद्ध वस्तुगत मूल्य महत्वपूर्ण हैं। ऐसे मूल्य मानवीय और आध्यात्मिक प्रतिष्ठा पर आधारित हैं।

17.5 सामाजिक वयवहार का पक्ष और विरोध

समाज के पक्ष में व्यवहार दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं। इनमें दूसरों की परेशानियों में सहयोग, मदद करना और दुःख बांटना आते हैं। बच्चे सहानुभूति के विकास में चार

संभावित अवस्थाओं से गुजरते हैं जो उनके व्यवहार को समाज के पक्ष में संभव बनाते हैं।

प्रथम अवस्था में शिशुओं को आत्म और दूसरों में भेद करने में कठिनाई होती है। वे रोते हैं जब दूसरे रोते हैं और वे दूसरों के हंसने पर हंसते हैं। एक वर्ष बाद धीरे–धीरे उनमें दूसरों से भिन्न आत्म का बोध विकसित होने लगता है और यहां पर वे दूसरी अवस्था में प्रवेश करते हैं जिसे अहं केन्द्रित सोच कहा जाता है। वे दूसरों की उसी तरह मदद करते हैं जैसी वे अपने लिये दूसरों से चाहते हैं। इसके बाद तीसरी अवस्था आती है जिसमें वे बच्चे परिस्थिति विशेष सहानुभूति दर्शाते हैं। अन्त में जब वे चौथी अवस्था में पहुंचते हैं तब वे अपनी दुःख की अभिव्यक्ति दूसरों के दुःख के साथ करते हैं। वास्तव में चौथी अवस्था में सहानुभूति का केवल उपयुक्त प्रदर्शन ही दर्शाया जाता है, अर्थात् दूसरे लोग, उनसे जो उपयुह्म सहानुभूति युक्त प्रतिक्रिया दिखाते हैं, केवल संवेगात्मक समर्थन पाते हैं।

बच्चे सहायतापूर्ण व्यवहार परिचित लोगों के अनुकरण करके सीख सकते हैं। उत्तरदायित्व लेने, भूमिका निभाने, वांछित व्यवहार जब भी घटित होता है के पुनर्बलन के अवसर पुरोसामाजिक व्यवहार के विकास को मजबूत करेंगे।

समाज विरोधी व्यवहार के अन्तर्गत भगोड़ापन, अपचार, चोरी, विध्वंसक वत्ति और मान्य सामाजिक नियमों और रीतियों का उल्लंघन करने के अन्य रूप आते हैं। समाज विरोधी व्यवहार के कुछ मामलों के कारक तत्व पर्यावरणीय के बजाय व्यक्तिगत अधिक हो सकते हैं, जबकि अन्य मामलों में इसका उल्टा हो सकता है। फिर भी, ज्यादातर व्यक्तिगत और पर्यावरणीय प्रभावों का भिन्न अनुपात में सम्मिश्रण होता है, जो अपचारी व्यवहारों की ओर ले जाता है।

समाज विरोधी मनोवैज्ञानिक प्रबन्धन के अन्तर्गत सामाजिक रचनात्मक व्यवहार के लिए परामर्श और निर्देशन आत्मविश्वास प्रशिक्षण या सामाजिक कौशल प्रशिक्षण आते हैं जो उन्हें आक्रमक व्यवहार छोड़ने या आक्रमक व्यवहार को कुछ रचनात्मक व्यवहार में बदलने योग्य बना देंगे। यह विकासोन्मुख बच्चे के लिये तथा साथ ही समाज के लिये लाभप्रद होगा।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. पुरोसामाजिक व्यवहार के दो उदाहरण दीजिये।
2. किन्हीं दो तकनीकों का उल्लेख कीजिए जो पुरोसामाजिक व्यवहार को मजबूत कर सकते हैं।
3. समाज विरोधी व्यवहार के कोई तीन उदाहरण दीजिये।

आपने क्या सीखा

- आत्म नियंत्रण एक प्रक्रम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को इस तरह नियमित करना सीखता है जिससे उसे अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सके।
- लगातार धूम्रपान करना, भूख से ज्यादा खाना, अनियंत्रित व्यवहार कुछ ऐसी अनुक्रियायें हैं जिन्हें आत्म नियंत्रण द्वारा सुधारा जा सकता है।
- आत्म निर्देशन प्रशिक्षण आत्म नियंत्रण का एक तरीका है। यह आत्मवार्ता पर बल देता है।
- नैतिक विकास की आधारशिला उस समय रखी जाती है जब नैतिक विश्वास आत्मसात कर लिये जाते हैं। जीन पियाजे और कोलबर्ग विख्यात सिद्धान्तवादी हैं जिन्होंने नैतिक विकास पर अपने विचार रखे।
- पुरोसामाजिक व्यवहार एक अनुक्रिया है जो समाज के सदस्यों को उनके विकास में लाभ पहुंचाती है जो बदले में समाज को सकारात्मक दिशाओं में बढ़ने और विकसित होने योग्य बनाता है। असामाजिक व्यवहार वह है जो समाज कल्याण एवं विकास को बाधित करता है।

पाठान्त प्रश्न

1. किसी समस्या की स्थिति में आप आत्म नियंत्रण करने की प्रक्रिया को किस प्रकार लागू करेंगे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
2. नैतिकता कैसे विकसित होती है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. आत्म नियंत्रण एक प्रक्रम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को इस तरह नियमित करना सीखता है जिससे उसे आत्म सन्तोष प्राप्त हो सके।
2. नैतिक विकास की अवस्थाओं की चर्चा कीजिये।

17.2 1. आंतरिक द्वन्दों का समाधान 2. तीन मुख्य स्तर

17.3 1. सहयोग 2. भूमिका निभाना और स्वयं को तदीनुरूप ढालना
3. चोरी करना, व्यभिचार, अपचार

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. सन्दर्भ 17.2 2. सन्दर्भ 17.3